Text Dark And Light Within The Book Only

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182637
UNIVERSAL LIBRARY

मीरा-गीतावली

सम्पादक

गंगाप्रसाद पाण्डेय, एम० ए०

१९४७

प्रयाग-महिला-विद्यापीठ

इलाहाबाद

प्रकाशक : प्रयाग-महिला-विद्यापीठ, प्रयाग।
द्वितीय बार १०००

मूल्य ॥)

मुद्रक : जगतनारायणलाल, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

विषय-प्रवेश

Where there is an element of the superfluovs in our hearts' relationship with the world art has its birth. Where our personality feels its wealth it breaks out in display. The building of men's true world—the living world of truth and beauty—is the function of art.

—*Tagore (Personality)*

जब हमारे अन्तर्जगत का सम्बन्ध बहिर्जगत के साथ भावाधिक्य का होता है, तब कला की सृष्टि होती है। व्यक्तित्व के वैभवशील अनुभव की क्रीड़ा ही कला के रूप में व्यक्त होती है। सत्य और सौन्दर्य से अनुप्राणित मनुष्य के सच्चे संसार का निर्माण करना ही कला का कार्य है।

—टैगोर (व्यक्तित्व)

काव्य भी एक ऐसी ही कला है और मीरा एक कवियित्रि। मनुष्य के बाह्य और अन्तर्जगत के तारतम्य में एक सौन्दर्य है, क्योंकि दोनों एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। बाह्य जगत के सौन्दर्य का अपनी ग्राहणी शक्ति के अनुसार सभी उपभोग करते हैं, किन्तु अन्तर्जगत के सौन्दर्य का उपभोग करने और कराने की क्षमता केवल कवि रखता है। जो कवि रूप-सौन्दर्य के साथ गुण-सौन्दर्य शारीरिक सौन्दर्य के साथ आत्मिक सौन्दर्य तथा प्रत्यक्ष सौन्दर्य के साथ अप्रत्यक्ष (अपेक्षित) सौन्दर्य का भी उद्‌घाटन करता है, वही सच्चा कवि है। हिन्दी के 'भक्ति-काल' में ऐसे सर्वमान्य कवियों की कमी नहीं। मीरा उनमें से एक है। प्रारम्भ से ही हमारा जीवन सामाजिक अनुकरण के आधार पर लौकिक

पूर्णता को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। यह नियम-विधान स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों प्रकार की क्रियाओं को संचालित एवं संयमित करता है। क्षमा, क्रोध, करुणा, उत्साह और सहानुभूति आदि की भी सत्ता समाज तथा संसार के ही माध्यम से प्रकट एवं परिवर्धित होती है। मनुष्य की सभी प्रवृत्तियों की तृप्ति अपने पूर्ण गुण को प्राप्त कर या उस स्थिति तक पहुँच कर ही होती है। चाहे वह उसे अपने में पा ले या दूसरे में। गुण-रहित व्यक्ति भी गुणवान के सामने नतमस्तक होता है, क्योंकि मनुष्य की सत् प्रवृत्तियाँ स्वाभाविक हैं और कुप्रवृत्तियाँ अस्वाभाविक। जो व्यक्ति जिस गुण का अधिकारी होता है उससे उस गुण की शोभा और उसका शृंगार बढ़ जाता है और समाज के किसी भी व्यक्ति को, किसी भी वर्ग को उससे असंतोष नहीं होता, क्योंकि गुण या अवगुण समाज के बाहर अपनी सत्ता को भी प्रमाणित नहीं कर सकता। आध्यात्मिक अथवा आन्तरिक संस्कारों के सहयोग से जीवन में जो एक दिव्यता तथा सर्जीवता का आभास होता है, उसकी सार्थकता जीवन के ही बीच में सम्भव है। राम और कृष्ण के जीवन भारत के धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास में जीवन की इसी स्वच्छ स्निग्ध सार्थकता के साक्षी और प्रतीक हैं, सगुणोपासना की पूर्ण पूर्ति है; और हैं अवतारवाद की कल्पना के आदर्श। काव्य में किसी पात्र की अवतारणा तथा स्थापना की दृष्टि से केवल उसी पात्र की सत्ता उसकी चरम परिणति के लिये पर्याप्त नहीं होती। उस पात्र के जीवन की विविधता और विशेषता दिखलाने के लिये किसी समाज का आधार लेना पड़ता है। योगेश्वर कृष्ण का चरित्र-चित्रण महाभारतकार, जयदेव, विद्यापति, नन्ददास तथा सूर का चरम उद्देश्य है, श्रेय और प्रेय दोनों, किन्तु क्या वह राधा, नन्द-यशोदा गोपियों के बिना पूर्ण कहा जा सकता है? जीवन का चित्रण जीवन के ही आधार तथा संसर्ग से हो सकता है, शायद इसीलिए कालिदास को

वन्य ऋषि-कन्या शकुन्तला की दो सखियों, प्रियंवदा और अनुसूया की सृष्टि करनी पड़ी। समाज को एक ऐसी भी स्थिति आती है जब उसमें जीवन की अभिव्यक्ति के लिये जीवन का आधार अथवा माध्यम नहीं मिलता तब वह अतीत-जीवन के सुखद संस्करणों और उत्साहपूर्ण स्मृतियों के सहयोग से आगे बढ़ने का प्रयास करता है, क्योंकि जीवन कभी थमता नहीं। भगवान कृष्ण का जीवन इस बात का उज्ज्वल उदाहरण है। भक्तिकाल के कवियों ने उस पराधीनता एवं पीड़न के आवरण में कृष्ण ऐसे सुदृढ़ अवलम्ब को लेकर अपने सारे मनोविकारों को अभिव्यक्ति दी है। उस समय का वातावरण ही ऐसा था। देश में यवनों का आधिपत्य स्थापित हो जाने के पश्चात् भारतीय हिन्दू जनता में गौरव, गर्व और उत्साह तथा उल्लास का अभाव हो गया। उनके सामने ही उनके देव-मन्दिर गिराये जाने लगे, पूज्य-देव मूर्तियां तोड़ी जाने लगीं और श्रद्धेय महान् पुरुषों का अपमान होने लगा। देश के वीर पुरुष या तो मुसलमानों से लड़कर या आपस ही में लड़कर समाप्त हो गये। राष्ट्र की इस परिस्थिति में, जीवन की इस विवशता में, वे न तो अपनी वीरता के गीत गा सकते थे, न सुन सकते थे। अपने पौरुष तथा जीवन से हताश जाति के लिये भगवान की करुणा का ही आश्रय शेष रहता है। इस राजनीतिक उलटफेर के साथ-साथ धार्मिक स्थिति भी जड़ता को प्राप्त हो गई थी। कर्म, ज्ञान और भक्ति की धार्मिक त्रिवेणी सूख चली थी। धर्म के नाम पर कर्म का स्थान बाहरी विधि-विधान, पूजा-पाठ, तीर्थाटन स्नान आदि ले चुके थे और ज्ञान के नाम पर गुह्य रहस्य और घट के भीतर के वासा का स्थान रम-जम गया था। धर्म की भावात्मक अनुभूति अथवा भक्ति, जिसका सूत्रपात महाभारत काल में हुआ था डूबती-उतराती चली आ रही थी। इसी धारा को भक्त कवियों ने जनता की आत्मरक्षा के लिये जगाया। प्रेम-स्वरूप ईश्वर को सामने लाकर भक्त कवियों ने हिन्दुओं और मुसलमानों को

जीवनवृत्त

किसी कलाकार की कला का निरीक्षण तथा परीक्षण करने के लिए कलाकार के जीवन का परिचय उपयोगी ही नहीं आवश्यक है। कला में, विशेषकर काव्य में जीवन का श्रेय-प्रेय दोनों अनुष्ठापित रहता है। सांसारिक प्रेय कभी हानिकर और अनुचित भी हो सकता है, किन्तु काव्य में श्रेय-प्रेय दोनों सदैव हित-साधक और आनन्दप्रद होते हैं। कवि काव्य से बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के प्रयोजनों की पूर्ति कर सकता है। कवि की इसी शक्ति का नाम प्रतिभा है। अस्तु जीवन के साथ विकसित तथा पोषित होने वाली इस प्रतिभा का परिचय पाने के लिये जीवन के विकास का परिज्ञान अतीव अपेक्षित है। मीराबाई केजीवन और उसकी घटनाओं के निर्णय के विषय में विद्वानों में मत-भेद रहता आया है। वस्तुतः कुछ भ्रामक बातों का प्रचार भी हुआ, किन्तु राजस्थान के गौरवान्वित इतिहास-प्रेमियों ने अथक खोज के पश्चात् अब मीरा के जीवन के विषय की बहुत सी बातें बड़े वैज्ञानिक रीति से जनता के सामने उपस्थित की हैं।

मीराबाई, जोधपुर के संस्थापक प्रसिद्ध राठौर राजा राव जोधाजी के सुपुत्र राव दूदाजी की पौत्री और दूदाजी के चौथे पुत्र रत्नसिंह की एकमात्र सन्तान थीं। रत्नसिंह को उनके पिता दूदाजी ने राज्य की ओर से जीवन निर्वाह के लिये जागीर के रूप में बाजोली, कुड़की आदि बारह गाँव दिये थे। मीरा का जन्म सम्वत् १५५५ में कुड़की नामक गाँव में हुआ था। उस राजसी ठाट-बाट के बीच में बचपन से ही मीरा के हृदय में श्री गिरधरलाल की प्रेमपूर्ण उपासना तथा आराधना अपना स्थान जमाये हुए थी। उनकी माँ बड़ी भक्त और

कृष्ण-निष्ठ थीं। मीरा की इस कृष्ण भक्ति की उद्भावना के कारणों में से दो एक घटनाएँ उल्लेखनीय हैं। एक बार मीरा किसी अतिथि साधु की पूजा की मूर्ति श्री गिरधारीलाल पर रीझ गई, किन्तु साधु ने स्वयं अपनी इष्ट-मूर्ति को इस बालिका के विनोद का विधान बनाने में बड़ी आनाकानी की और वहाँ से मूर्ति लेकर चला गया। मीरा ने बाल-हठ के आवेग में खाना-पीना तक छोड़ दिया, मगर लोग क्या करते, माँगते खाते घुमक्कड़ साधु का क्या पता? कहा जाता है कि उस साधु को स्वप्न हुआ कि वह शीघ्र उस मूर्ति को मीरा को दे दे। साधु को वापस आना पड़ा और मूर्ति देनी पड़ी। मीरा उस मूर्ति को पाकर बहुत प्रसन्न हुई और उसे सदा अपने पास रखने लगी। एक घटना और कही जाती है। पड़ोस की किसी अपनी बाल-सखिनी का विवाह होता देख मीरा ने अपनी माँ से सहज कौतूहलता से पूछा कि उसका दूल्हा कौन है? माँ ने उत्तर में मीरा के हाथ की श्री गिरधरलाल की मूर्ति की ओर हँसते हुए संकेत कर दिया। कहा जाता है कि उसी क्षण से मीरा की लगन श्रीकृष्ण से लग गई। कवित्वमयी प्रतिभा की अभिव्यक्ति, उद्बोधन, पूर्व-संस्कार, अभ्यास और जीवन का रागमयी आकुलताओं के उद्वेलन से होता है। मीरा के काव्य का आधार श्री गिरधारीलाल का होना, इस बात का प्रमाण है। आगे चलकर कवियित्री के रूप में मीरा ने कुछ ऐसी ही घटनाओं का उल्लेख किया है। सास के यह पूछने पर कि –

'ओरज पूजै गोरज्या, जी थे क्यू पूजो न गोर।
मन बंछत फल पावस्यो जी, थे क्यू पूजे ओर'।

मीरा ने कहा था—

'नहि हम पूजाँ गोरज्याँ जी, नहि पूजा अन देव।
परम सनेही गोविंदो, थे काँई जानो म्हारो भेव'।

तब सास ने व्यंग करते हुए कहा था—

'बाल सनेही गोविंदो, साध सन्ता को काम।
थें बेटी राठौर की, थाने राज दियो भगवान।'

इस वार्तालाप में 'परम सनेही' 'बाल सनेही' शब्दों पर ध्यान देने लायक है। 'बालपना की प्रीत' की इन पक्तियों में अपनी खासी स्थिति है—

आवो मन मोहना जी मीठा थारो बोल।
'बालापन की प्रीत' रमइयाजी, कदे नाहिं आयो थारो तोल!

मीरा का एक पद, जिसमें किसी स्वप्न ब्याह की चर्चा है इस प्रकार है—

'मीरा को गिरधर मिल्या जी, पूर्व जन्म के भाग।
सुपने में म्हाँने परण गया जी, होगया अचल सुहाग'।

माँ, बालिका मीरा के मन में इन संस्कारों को छोड़कर चलबसीं। तब राव दूदाजी ने स्नेह और सहानुभूति के कारण मीरा को अपने पास मेड़ता बुला लिया। अतएव अपने पितामह की देख भाल में उन का लालन पालन हुआ और उन्हें प्राथमिक शिक्षा मिली। दूदाजी का जीवन बहुत सच्चा और धार्मिक था, जिसका प्रभाव मीरा पर पड़ा। मीरा के उर्वर हृदय प्रान्त में प्रवाहित भक्ति की धारा अधिक आवेगवती हो उठी। कुल परम्परा के अनुसार मीरा का विवाह मेवाड़ के प्रसिद्ध महाराणा साँगा के जेष्ठपुत्र कुंवर भोजराज के साथ सम्वत् १५७३ में सम्पन्न हुआ। मीरा मेड़ते से अपनी ससुराल मेवाड़ में आकर राजवधू के रूप में अपने पति के साथ सुख-पूर्वक रहने लगीं। कुँवर भोजराज अधिक समय तक न जी सके और उनका देहावसान सम्भवतः सम्वत् १५७५ में हो गया। जिसको जितना महान एवं व्यापक कार्य करना होता है उसको उतना ही महान आघात भी सहना पड़ता है। पिछले जीवन की क्षण-भंगुरता ने ही बुद्ध को निर्वाण की खोज में लगाया था। मीरा का भी यही हाल रहा। युवावस्था के इस अकारण वैधव्य

की वेदना ने मीरा के जीवन में एक आमूल परिवर्तन ला दिया। मीरा इसके लिये पहले से तैयार थी। पति के साथ भी उसने अपने गिरधारी लाल को नहीं छोड़ा, जो इस स्थिति में उसके एक मात्र आराध्य बन गये। पति-वियोग के साथ ही मीरा ने अपने लौकिक राजरानीपन के स्वभावों, संस्कारों तथा सम्बन्धों को छिन्न-भिन्न कर दिया और एक भक्त की भाँति अपने इष्टदेव की आराधना में अन्तरलीन हो गई। इसके पाँच वर्ष बाद मीरा के पिता युद्ध में मारे गये और राणा का भी देहान्त हो गया। इन घटनाओं का विरक्तिपूर्ण प्रभाव मीरा पर पड़ा और उसका मन धीरे-धीरे पूर्णरूप से भक्ति-भावना की ओर उन्मुख होने लगा। रात दिन भगवत भजन और सत्संग तथा साधुओं की सेवा करना ही उनका कार्य हो चला। दर्शनों की इच्छा से मीरा बाहर के मन्दिरों में लोक-लज्जा छोड़ कर जाने लगीं और प्रेमावेश में आकर भगवान के सामने नाचने-गाने भी लगीं।

यह पद उसी समय के हैं—

'मैं तो साँवरे के रंग राची।

साजि सिंगार बाँधि पदु घुघरूँ, लोक लाज तजि नाची'।

इसमें मीरा ने अपना उद्देश्य भी बता दिया है—

मीरा प्रभु गिरधरनलाल सू भगति रसीली जाँची।

मीरा के इस समाजिक विद्रोह की बात दूर-दूर तक फैलने लगी और लोग उसके दर्शनों के लिए आने लगे। वल्लभीय सम्प्रदाय के लोग भी पहुंचे जिनके मत से मीरा का काव्य प्रभावित है। उपर्युक्त बातें मेवाड़ के प्रतिष्ठित राजवंश की मानमर्यादा के प्रतिकूल थीं जो अब मीरा के सामने अड़चनों के स्वरूप में उपस्थित हुईं। मीराबाई के देवर एवं राजपरिवार के अन्य सभी लोग मीरा के इस भक्त-आचरण से अत्यधिक असंतुष्ट हुए। मीरा ने कोई ध्यान नहीं दिया।

देवर के मरने के बाद उनके पुत्र विक्रमाजीत सिंह महाराणा हुए

वे स्वभावतः मीरा से अप्रसन्न थे और उन्होंने अनेक प्रकार के कष्ट पहुंचा कर मीरा को दण्ड देना अपना परम कर्तव्य समझा। मीरा ने उनके अत्याचारों का उल्लेख किया है—

'विष का प्याला राणा भेज्या अमृत कर आरोगी रे !'

'राणाजी थें जहर दियों म्हे जाणी !''

'डिबिए में भेज्या भुजंगम, सालिगराम करि जाणा !'

'सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय !'

महाराणा विक्रमाजीतसिंह के शासन की कुव्यवस्था से उत्साहित होकर बहादुरशाह ने मेवाड़ पर चढ़ाई की और उस पर अपना अधिकार कर लिया। इसी घटना के इधर-उधर किसी समय मीरा मेवाड़ छोड़कर अपने पीहर मेड़ता चली आई। वहाँ उन्हें कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ा, किन्तु जब जोधपुर के राव मालदेव ने राव वारमदेवजी से मेड़ता छीन लिया तब एक बार फिर से मीरा की आराधना में अव्यवस्था उत्पन्न हो गई। छोटी अवस्था के भीतर ही माता, मातामह पति, पिता तथा श्वसुर के स्वर्गवास हो जाने से मीरा का मन संसार से उदास हो चला था। विक्रमाजीत सिंह के द्वारा दिए गए कष्टों ने उस उदासी को एक विरक्ति का रूप दे दिया और अन्त में मेड़ता का छिनना मीरा की विरक्ति की चरम परिणति का कारण बना। मेड़ता को छोड़कर उन्होंने तीर्थयात्रा करने की ठानी और पर्यटन करती हुई वृन्दावन पहुँची। मीरा की सभी प्रत्यक्ष दुखद परिस्थितियों ने उनके साधना-पथ का परिष्कार किया, इसमें सन्देह नहीं। वृन्दावन की भी एक घटना बताई जाती है चैतन्य सम्प्रदायी श्री जीवगोस्वामी वहाँ के साधुओं में प्रसिद्ध थे। मीरा सर्वप्रथम उनके ही पास गई, किन्तु स्वामी जी यह कहला कर कि वे स्त्रियों से नहीं मिलते मीरा से नहीं मिले। मीरा का यह सँदेशा पाकर कि वह वृन्दावन में एक मात्र पुरुष श्रीकृष्ण को जानती थी, उन्हें आज ही ज्ञात हुआ कि यहाँ अपने को पुरुष

मानने वाले और भी व्यक्ति हैं। स्वामी जी इसके बाद बहुत लज्जित और प्रभावित हुए तथा नंगे पाँव मीरा से मिले। मीरा वहीं कुछ दिन तक ठहरीं और स्वामी जी का सत्संग लाभ किया। अन्त में वह वृन्दावन छोड़कर द्वारकाधाम चली गईं और श्रीरणछोरजी की भक्ति में तल्लीन रहने लगीं। मीराबाई के द्वारका जाने का पता पाकर मेवाड़ और मेड़ता दोनों राज्यों की ओर से ब्राह्मणों के द्वारा उसे वापस आने के आग्रहपूर्ण निमंत्रण भेजे गये, किन्तु उन्होंने आना स्वीकार नहीं किया। कहते हैं कि ब्राह्मणों के हठपूर्वक धरना देने पर मीराबाई श्रीरणछोरीजी की आज्ञा प्राप्त करने के लिये मन्दिर के भीतर गईं और भगवान की मूर्ति में समाहित हो गईं। यह घटना सम्वत् १६३० की बताई जाती है, पर कुछ लोग उसके बाद भी मीरा का रहना मानते हैं।

साधना के क्रम-विकास की गति को शाश्वत मानने वाले भक्तों का मत है कि सच्ची लगन वालों में भगवान स्वयं ऐसी प्रेरणा का प्राण-प्रवेग भर देते हैं जिसके द्वारा भक्त भगवान को प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त कर लेता है। मीरा के आराध्य भगवान के वचनों का उल्लेख आवश्यक जान पड़ता है—

न साधयति माँ योगो न सांख्यधर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपो, त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जितः॥

मीरा का जीवन भक्ति की इस शक्ति का उज्ज्वल उदाहरण है और मीरा भक्तशिरोमणि। इस प्रकार मीरा के जीवन-अध्ययन के बाद हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि कुल संस्कार तथा प्रत्यक्ष परिस्थितियाँ निमित्त मात्र थीं। मीरा के हृदय में कृष्ण-प्रेम की शिखा बालकाल से ही विद्यमान थी और समय पाकर वही विराट् प्रेम-ज्वाला बन गई जिसने मीरा को आत्मसात् कर लिया। मीरा का जीवन भक्ति तथा विरक्ति के क्रम-विकास का एक अनोखा इतिहास है और मीरा उसकी प्रधान पात्री।

मीराबाई की पद-रचना

ईश्वर और भक्त का व्यक्तिगत भावनात्मक सम्बन्ध ही भक्ति का स्वरूप धारण करता है। साधारण व्यवहार की भाँति भिन्न-भिन्न भक्तों ने भिन्न-भिन्न प्रकार की भक्ति का उद्‌घाटन किया और उसके द्वारा अपने मनोनीत भगवान की उपासना की। जीवन की भावात्मक अभिव्यक्ति में प्रत्येक व्यक्ति को किसी एक निश्चित व्यवस्था तथा विधान से संतोष होना सम्भव नहीं है, अतः भक्तों के विभिन्न दृष्टि-कोणों के फलस्वरूप भक्ति के भी कई प्रकार सामने आये।

मीरा की भक्ति माधुर्य भाव की थी। इस भक्ति के अनुसार आराध्य मनोरम प्रियतम का स्वरूप धारण करता है। इसमें प्रेम का प्राधान्य रहता है। भक्त की नारी-रूप आत्मा, पुरुष-रूप भगवान की आराधना उपासना करती है। मनुष्य जीवन का समस्त दाम्पत्य स्नेह और उसका आकुल-व्याकुल आकर्षण भक्ति की आत्मा और परमात्मा के बीच में साकार और सप्राण हो उठता है। इस प्रकार भक्ति की इस अवस्था में चिरन्तन नारी तथा पुरुष की मनोभावनाओं की अभिनव अभिव्यक्ति होती है। मीरा ने कृष्ण के साथ इसी प्रकार का स्नेह संबंध स्थापित किया और उनकी अनन्य जीवन-संगिनी के रूप में अपने को निवेदित किया। माधुर्य-भाव की भक्ति श्रेष्ठ मानी जाती है। भक्ति भी तो हृदय का एक राग है जिसकी पूर्णता माधुर्य भाव मे होती है। माधुर्य में मनोरागों का तीव्र आवेग और अनुराग की अनुभूतियों का पूर्ण उद्वेलन समाहित रहता है। मीरा भक्ति की इस भावना में सबसे आगे हैं।

आत्मा की प्रतीक नारी एक आधार चाहती है। आत्म-समर्पण

उसकी सब से बड़ी लालसा होती है। मीरा का पार्थिव वैधव्य तथा स्वजनों का वियोग कृष्ण में अचल सुहाग एवं महामिलन के रूप में पुलकित हो उठा। व्यक्ति की सीमा से उठकर व्यापक व्यक्तित्व की सीमा पर आसीन हो गया। मीरा का सांसारिक वियोग कृष्ण के प्रेम में अपनी सारी स्मृतियों को लिये हुये एक नवीन उत्साह, उल्लास और उमंग से आलोकित हो उठा। नारी के अन्तस्तल में निहित सूक्ष्म सुकुमार प्रणव-भावना निर्भीक होकर एक अगाध सरिता की भाँति फूट निकली और मीरा ने साफ कह दिया—'जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई'। मीरा के पदों में उसकी आत्मा के सभी स्वर स्पंदित हो गये, इसमें सन्देह नहीं। मीरा की प्रायः सभी रचनायें गीतों के रूप में हैं। गीतों की यह परम्परा हिन्दी-काव्य की प्राथमिक अवस्था से ही चली आ रही थी। सिद्धों तथा नाथपंथियों के गीत उसके उदाहरण हैं। स्वानुभूति द्वारा उत्थित भाव तथा संगीतमय पदों का विशुद्ध स्वरूप सर्वप्रथम 'गीत-गोविन्द' में मिलता है। गीतों की यह पद्धति कबीर, रैदास तथा अन्य कवियों द्वारा संरक्षित और परिवर्धित होती हुई कृष्ण काव्य के अमर कवि सूर और मीरा तक पहुँची। मीरा की विकलताएँ इन गीतों के लिए सर्वथा उपयुक्त थीं, क्योंकि प्रेमोन्माद के अगाध आवेश में नारी हृदय की कोमल भावनाओं को स्वरबद्ध करने का गीत सब से अधिक सुन्दर साधन है। प्रेम-दशा जितनी तीव्र और व्यापक होती है, जीवन की कोई अन्य स्थिति उतनी नहीं। प्रेम के दोनों पक्षों में समस्त प्रकृति के साथ जीवन की जो समरूपता पाई जाती है, वह क्रोध, शोक उत्साह आदि में नहीं मिलती। मानव-जीवन के मनोविज्ञान का यह तत्व काव्य में गीतों के रूप में स्वीकार किया गया है। गीत काव्य में कवि के अन्तर्जगत का भाव-सौन्दर्य उसके व्यक्तिगत दृष्टिकोण के साथ संगीतमय होकर शब्दों में उतर आता है। मीरा की आत्मानुभूति तीव्रता में अद्वितीय है। यही कारण है कि मीरा का प्रत्येक पद मनुष्य

के अन्तःकरण के मर्मस्थल को स्पर्श करता है। मीरा का जीवन और उसका हृदय प्रेम के महाभाव की आनन्दानुभूति का अधिकारी था क्योंकि वह पार्थिव प्रेम-विह्वला भाव-प्रवण नारी थी। संसार के सभी बन्धन अपने आप कट चुके थे। अतएव उसका हृदय यदि 'सर्व भूतमयं हरि' से ओतप्रोत हो गया तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं। बिना किसी बाधा और व्यवधान के उसने सच्चे हृदय से कह दिया—'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई' और 'पिया बिन रह्यो न जाय' का वास्तविक अनुभव भी किया। मीरा के काव्य का विषय उसके आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति है। उसने अपने इष्टदेव, सहज सुन्दर मदन मोहन की छवि के आधार पर उनके नाम, रूप, लीला तथा धाम का प्रेमार्पण वर्णन किया है।

यह पहले बताया जा चुका है कि बालकाल से ही मीरा के हृदय में गिरधरलाल के प्रति परम आत्मीयता का भाव उदय हो चुका था जो जीवन की परिस्थितियों के साथ क्रमशः दृढ़ से दृढ़तर होता गया। मीरा के जीवन में, उसके काव्य में केवल एकही भाव है, एक ही रंग है, और एक ही रस है जिसकी स्पष्ट छाया मीरा के पदों में पायी जाती है। मीरा के जीवन में दो विरोधी परिस्थितियों की स्थिति बहुत स्पष्ट है। विषादमय और अनुरागमय। इसी कारण मीराबाई का दृष्टिकोण जगत् के प्रति विरक्तिमय तथा कृष्ण के प्रति अनुरक्तिमय है। इन्हीं दोनों प्रकार की भावनाओं का प्रभाव उनकी रचनाओं में भी परिलक्षित होता है—

भज मन चरण कँवल अविनासी।
जेताइ दीसे धरण गगन बिच, तेताइ सब उठ जासी।'

संसार की इस नश्वर स्थिति से मीरा को बहुत क्षोभ हुआ है और इसकी दुर्दशा पर वह कभी-कभी रो तक पड़ती है—'भगति देख राजी हुई जगति देख रोई।' जीव की मुक्ति के लिए भगवान की उपासना

का साधन भी मीरा ने बताया है। जिसके अनुसार केवल परमात्मा की भक्ति ही जीवन की सार्थकता है—

चंदा जायगा सूरज जायगा, जायगी धरणि अकासी।
पवन पाणी दोनुं जाँयगे, अटल रहे अविनासी।

अस्तु सूर्य, पृथ्वी तथा आकाश आदि के नष्ट हो जाने पर भी जो अविनाशी अटल रहेगा वही मनुष्य के स्थायी सम्बन्ध का पात्र है, स्थायी प्रेम उसीसे हो सकता है, वही अपना अमर पति है। मीरा ने भगवान के इस अविनाशी रूप का अर्थ कभी निर्गुण ब्रह्म नहीं माना, क्योंकि उसने उसे पूर्ण पुरुष एवं लीलामय भगवान के रूप में स्मरण किया है—

हमारो प्रणाम बाँके विहारी को।
मोर मुकुट माथे तिलक बिराजै कुंडल अलकाकारी को।
अधर मधुर पर बंसी बजावै, रीझ रिझावै राधा प्यारी को।
यह छवि देख मगन भई मीराँ मोहन गिरवरधारी को।

× × ×

मेरो मन बसिगो गिरधरलाल सों।
मोर मुकुट पीताम्बर हो, गल बैजंती माल।
गउवन के संग डोलत, हो जसुमति को लाल।

इनके अतिरिक्त 'भक्तवछल', 'पतितपावन', नंदनन्दन आदि शब्द कृष्ण के लिए प्रयुक्त हुए हैं। मीरा की दृष्टि में उसके इष्टदेव के सगुण वा निर्गुण रूप में कोई अन्तर नहीं है, किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं है, क्योंकि जहाँ मीरा एक ओर यह कहती है कि—'तुम बिच हम बिच अन्तर नाहीं, जैसे सूरजघामा, और इस प्रकार अपने आराध्य के साथ अपना तादात्म्य प्रकट करती है, वहाँ दूसरी ओर उसे एक अलग तथा दूर रहने वाले की भाँति अपने पास आने का निमंत्रण भी देती है—

तुम आज्यो जी रामा, आवत आस्याँ सामा ।
तुम मिलियाँ मैं बहु सुख पाऊँ, सरैं मनोरथ कामा ।
तुम बिच, हम बिच अन्तर नाहीं, जैसे सूरज घामा ।
मीराँ मन के और न माने, चाहे सुन्दर स्यामा ।

× × ×

मात पिता तुम को वियो, तुम ही भल जानो हो ।
तुम तजि और भतार को, मन में नहिं आनो हो ।
तुम प्रभु पूरन ब्रह्म हो, पूरन पद दीजै हो ।
मीरा व्याकुल बिरहनी, अपनी कर लीजै हो ।

इस 'पूरन ब्रह्म' को भतार कहने का यह आशय है कि मीरा अपने प्रियतम के आध्यात्मक स्वरूप का भी परिज्ञान रखता है, किन्तु अपनी प्रेम-भावना की तृप्ति के लिये उसके अमूर्त रूप की अपेक्षा सगुण रूप को ही अभीष्ट समझती है । व्यापक ब्रह्म के प्रतीक स्वरूप भगवान कृष्ण ही उसके आराध्य हैं, इसमें किसी प्रकार के विवाद की सम्भावना नहीं है । मीरा के पदों में नंदनन्दन का ही सर्वत्र अभिनन्दन है । कृष्ण के प्रति आत्म-समर्पण एवं प्रणय-निवेदन की वाणी का झीना आवरण वहन कर उसकी कविता कामिनी संसार में अपनी माधुरी छटा दिखाती हुई अवतरित हुई है । यही कारण है कि मीरा की प्रेम-पयस्वनी में लोक-लाज की मर्यादा के कगारों का कोई अस्तित्व नहीं पाया जाता । परमात्मा की अलौकिकता की अपरोक्ष अनुभूति के साथ-साथ मीरा उसे अपने पार्थिव दैनिक व्यवहारों के बीच में स्थापित करना चाहती थी जिससे मीरा को सब घटवासी आत्मा का संसार में ही प्रत्यक्षीकरण हो जाय—

लगी मोहि राम खुमारी हो ।
रिमझिम बरसै मेहड़ा, भीजै तन सारी हो ।
चहुँ दिस चमकै दामणी, गरजै घन भारी हो ।

सतगुर भेद बताइया, खोली भरम किंवारी हो।
सब घट दीसै आतमा, सब ही सूँ न्यारी हो॥

जो भी हो मीरा तो केवल हरि 'रंग राचूँगी' जानती है।

स्त्री-पुरुष की आसक्ति के ऐसे ही क्षणों में शृङ्गार रस की उद्भावना होती है, अतएव मधुर रस के भी भाव उसी के समान होते हैं, किन्तु यह स्मरण रखना होगा कि शृङ्गार का स्थायी भाव रति स्थूल शरीर से सम्बन्धित है, किन्तु मधुर रस आत्मा का आध्यात्मिक स्वभाव है। मधुर रस की अनुभूति शृङ्गार के माध्यम से होकर भी इन्द्रियातीत है। ब्रज की गोपियों में शृङ्गार का परिष्करण मधुर रस के रूप में हुआ था, क्योंकि वे कृष्ण-प्रेम में पागल थीं। उनका प्रेम नित्य, एकान्त और स्वार्थहीन था, उसमें वासना का अवकाश नहीं, शारीरिकता का आभास नहीं और न किसी प्रकार की बाधा का भय है। यही 'गोपी भाव' मीरा का आदर्श था। यह प्रसिद्ध है कि मीरा अपने को ललिता नाम की गोपी का अवतार समझा करती थीं। उनके कई पदों में इसका संकेत है—

हेली म्हाँसू हरि बिन रह्यो न जाय।
साध लड़ै मोरी ननद खिजावै, राणा रह्या रिसाय।
पहरो भी राख्यो चौकी बिठार्‌यो, ताला दियो जड़ाय।
पूर्व जनम की प्रीत पुराणी, सो क्यूँ छोड़ी जाय।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, ओरे न आवै म्हारी दाय।

शायद जीवन की इन्हीं परिस्थितियों के कारण मीरा की 'रामखुमारी' बढ़ती गई और वह उसी की मस्ती में आत्मलीन हो गई। माधुर्य भाव या परम भाव की इस उपासना में मीरा को किसी प्रकारकी कठिनाई नहीं थी, उसे आधार का कोई माध्यम नहीं खोजना था। यह सब तो उसके लिये सहज स्वाभाविक था। इस दृष्टिकोण से मीरा की किसी भी कवि से कोई तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि जायसी अत्यन्त

सूक्ष्म के उपासक हैं, सूर के हाथ में गोपियाँ हैं जो पत्नी नहीं परकीया हैं, भवभूति के हाथ में सीता और कालिदास के हाथ में शकुन्तला है, किन्तु मीरा अपने इष्टदेव की आराधना पति के रूप में करनेवाली अकेली है। गोपियों की भाँति उसको निर्गुण से कोई चिढ़ नहीं है, वरन् वह दोनों स्वरूपों के सामञ्जस्य का रहस्य जानती है। प्रत्यक्ष जीवन में अप्रत्यक्ष जीवन की इस संगति से सजीवता और शक्ति का आविर्भाव होता है। कवि के हृदय में किसी व्यक्ति का स्थूल शरीर स्थान नहीं पा सकता, इसलिये जब तक उसका सम्बन्ध हृदय के साथ नहीं होता तब तक काव्य में उसका विधान असम्भव है। अस्तु, कलाकार अपने हृदय में, किसी के आत्म-भाव की सत्ता के प्रभाव ही को ग्रहण करता है और अपनी आध्यात्मिक शक्ति का योग देकर काव्य में उस का मार्मिक उद्घाटन करता है। जिस प्रकार किसी शक्ति का चित्र उसके आलोक और छाया के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, उसी प्रकार काव्य का जीवन भी उसकी सत्ता के प्रभाव के अलावा और कुछ नहीं प्रत्यक्ष जीवन का सौन्दर्य काव्य में परोक्ष सौन्दर्य के रूप में प्रविष्ट होता है। इस कारण उसका रहस्यमय होना स्वाभाविक है। मीरा की रहस्यात्मक भावनाओं का यही रहस्य है। मीरा न तो कबीर की भाँति ज्ञान विदग्ध थी, न जायसी की भाँति कवि-कला में निपुण। वह केवल प्रेम पुजारिन है, उसके सभी कार्य, सभी जीवन-व्यापार श्रीकृष्णार्पण हो चुके हैं।

मीरा अपने पदों में कवियित्री की अपेक्षा एक भक्तिन के रूप में सामने आती है। उसके भाव स्वतः प्रसूत हैं। उन्हें कला की कमनीयता अथवा बाह्य शृंगार की आवश्यकता नहीं। उसके काव्य में कलापक्ष की अपेक्षा भावपक्ष का ही प्राधान्य है। मीरा की भक्ति भी रूपासक्ति का सुफल है, क्योंकि उसके पूर्वानुराग में मधुर आकर्षण, स्नेह-स्निग्ध सम्बन्ध तथा प्रेमपूर्ण भावों की दृढ़ता है। उसके हृदय की कृष्णविषयक

भावना रति का रूप धारण कर उसके पदों में अवतरित हुई है। उसके सम्पूर्ण काव्य का आलंबन सर्वत्र श्रीगिरधारीलाल हैं। उनकी रूप माधुरी, उनका सम्मोहक शक्ति, उनका वंशीवादन आदि सभी बातों का सम्बन्ध पूर्वराग से है। कृष्ण के प्रति मीरा के इस प्रेम में विरह की स्थिति अत्यन्त करुण-कोमल है। प्रेम की प्रतीत का यह प्रतीक उल्लेखनीय है—

प्रेमहि मांसे विरह रस बसा, मैन के घर मधु अमृत बसा। —जायसी।

वास्तव में विरह ही प्रेम का सारतत्व है। मीरा ने भी अपने प्रेम की प्राथमिक अवस्था को विरह के रूप में ही उपस्थित किया है। मीरा का विरह; शृंगार के विप्रलंभ से भिन्न नहीं, किन्तु उसमें शृंगार की भाँति शारीरिक कष्टों के वर्णन की अपेक्षा मानसिक विकलता की प्रधानता है, जिसमें कृष्ण को प्राप्त करने की बड़ी ही मार्मिक तथा व्यापक भावना का पारपूर्ण प्लावन है। मीरा के पूर्वराग और विरह के बाद प्रेम की तीसरी अवस्था संयोग अथवा मिलन में आनन्द एवं उत्साह के भावों का भी अच्छा प्रस्फुटन हुआ है। यद्यपि मीरा का संयोग वर्णन कुछ परम्परागत तथा साहित्यिक पद्धति का अनुसरण करता सा है, तथापि कुछ पद कवियित्री की प्रियतम में मिलती हुई भावना एवं तन्मयता के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। यह तो पहले कहा जा चुका है कि मीरा के काव्य में पांडित्य का प्रदर्शन नहीं, उसके पद तो प्रेम की आकुलता से प्रसूत प्रेमोन्माद से स्पष्ट तथा सजीव चित्र हैं जिनके चित्रण में ज्ञान का रंग और कला की तूली का उपयोग नहीं किया गया है। ये चित्र कृष्ण के विरह-जन्य आँसुओं में अपने आप उछल पड़े हैं। यही कारण है कि मीरा के पदों में सूर से भी ज्यादा हृदय को स्पर्श करने की शक्ति है। मीरा सीधे हमारे हृदय की समवेदना जगाने में समर्थ है। अन्य कवियों के प्रेम-काव्य में उनका अस्तित्व स्थायी रहता है, किन्तु मीरा में उसका नितांत विस्मरण है। जीवन की

उच्चता में, भावों की साकारता में, स्नेह की स्निग्धता में कवि का व्यक्तित्व उसी प्रकार समाहित हो जाता है जिस प्रकार पानी में नमक। मीरा का जीवन उसके आत्मसमर्पण का उदाहरण है न कि आत्म-विज्ञापन का। पति-प्रेम के रूप में ढले हुए भक्ति रस से स्निग्ध-मधुर मीरा के पद अपनी दिव्यता माधुर्य में अकेले हैं।

मीरा के काव्य की सब से बड़ी विशेषता उसकी तन्मयता है। अपने विचारों की सत्यता तथा प्रतीति का परिचय उसने जिस सामाजिक विद्रोह के साथ दिया है, वह अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। मीरा के समय में एक आर्य-महिला के लिए सामाजिक तथा जातीय नियमों की उपेक्षा करना बहुत सहज नहीं था, जिसको मीरा ने सहज ही कर डाला। तुलसी, सूर, विद्यापति आदि में सामाजिक विद्रोह की यह शक्ति नहीं थी कि वे मीरा की भाँति गा उठते—

'सतन दिग बैठ-बैठ लोक लाज खोई'। इस प्रकार कृष्ण-भक्ति में पूर्णरूप से तन्मय होकर मीरा ने अपने को अपने आराध्य में मिला दिया, यही उसकी सबसे बड़ी सफलता है। गीत-काव्य में मीरा का स्थान मुकुट-मणि का है। इस तपस्विनी प्रेम-साधिका ने अपनी जीवन की समस्त आकांक्षाओं का परम विभूति तथा तृप्ति कृष्ण-प्रेम की पावन पयस्विनी को मान कर उसी में अपने को डुबो दिया, लय कर दिया। आज वह भारत की प्रेम-कवियित्रियों में सर्वश्रेष्ठ और सर्वात्मसमर्पण की सीमा का शृङ्गार करने में सर्वाधिक सफल मानी जाती है।

मीरा के इस महत्व को स्वीकार कर लेने के पश्चात् उसकी किसी कवि से तुलना करना उसका अनादर करना है। कबीर के प्रेम में स्त्री सुलभ भावुकता को स्थान कम है। कबीर का साहब निर्गुण-सगुण दोनों से परे है, किन्तु मीरा का गिरधरलाल दोनों रूपों का सामंजस्य स्वरूप है। जायसी की भावना मूलक प्रेमवेदना में भी शृंगार के दोनों पक्षों का उद्घाटन प्रेमी और प्रेमिका दोनों की ओर से हुआ है, किन्तु

मीरा तो केवल प्रिया है। सूर की गोपियों की उपासना परकीया भाव की है, किन्तु मीरा ने तो निरंतर पत्नीभाव से ही उपासना की है। गोपियाँ निर्गुण से नाराज हैं, मीरा उदासीन। गोपियाँ कृष्ण की प्रायः सभी लीलाओं का स्मरण करती हैं, किन्तु मीरा उनके रूप वर्णन और उसके साथ अपने तादात्म्य की चेष्टा में चूर रहती है। कहने का आशय यह कि अन्य कवियों ने भगवान के प्रति अपना प्रेम-प्रदर्शन करने के लिए कल्पना, वस्तु एवं संकेत का सहारा लिया है, परन्तु मीरा ने अपने भावों का प्रत्यक्षीकरण बड़े सहज स्वाभाविक ढंग से कर दिया है। इस प्रकार मीरा अपनी भक्ति में अथवा 'भगति-रसीली' में अकेली है, उसकी कविता का आत्मीयता-जनित अनूठापन और मिठास तथा प्रियमिलन की आकुल उत्कंठा और किसी कवि की कविता में खोजना व्यर्थ-प्रयास करना है। प्रेम की पीर का जीवन भर आस्वादन करने वाली मीरा अपनी स्थिति में अनन्य है, क्योंकि उसके उन्मुक्त तथा निर्भीक आकुल भावों की स्नेह-सुधा अन्यत्र दुर्लभ है।

मीरा की भाषा के विषय में भी दो शब्द कह देना अनुचित न होगा। उसकी पूरी पदावली फुटकर पदों का संकलन मात्र है। प्रत्येक पद की भाषा एक ही तरह की नहीं। राजस्थानी, ब्रजभाषा तथा गुजराती भाषा का न्यूनाधिक प्रयोग मीरा ने किया है। कहीं कहीं पंजाबी और खड़ी बोली तथा पूरबी का भी प्रयोग पाया जाता है, किन्तु प्राधान्य राजस्थानी का ही है। भावना की मधुरता के सम्मोहन के कारण मीरा के पदों का सारे भारत में प्रचार है, अतएव पदों की भाषा को लोगों ने अपने आप बहुत कुछ परिवर्तित कर लिया है।

मीरा-गीतावली

विनय

१

मन रे परसि हरि के चरण ।
सुभग सीतल कँवल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण ।
जिण चरण प्रहलाद परसे, इन्द्र पदवी धरण ।
जिण चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपन सरण ।
जिण चरण ब्रह्मांड भेट्यो, नखसिखा सिरी धरण ।
जिण चरण प्रभु परसि लीने तरी गोतम घरण ।
जिण चरण कालीनाग नाथ्यो, गोप लीला करण ।
जिण चरण गोबरधन धार्‌यो, इन्द्र को गरब हरण ।
दासि मीराँ लाल गिरधर, अगम तारण तरण ॥

शब्दार्थ—परसि=स्पर्शकर । त्रिविध=तीन ताप (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक)। नखसिखा=नख से सिर तक। सिरी=श्री, शोभा । घरण=पत्नी । गरब=गर्व । अगम=गहरा संसार सागर । तारण= पार करनेवाला । तरन=नाव ।

२

भज मन चरण कँवल अविनासी ।
जेताइ दीसे धरण गगन बिच, तेताइ सब उठ जासी ।
कहा भयो तीरथ ब्रत कीन्हे, कहा लिये करवत कासी ।
इण देही का गरब न करणा, माटी में मिल जासी ।

यो संसार चहर की बाजी, साँझ पड्याँ उठ जासी।
कहा भयो है भगवा पहरयाँ, घर तज भये सन्यासी!
जोगी होय जुगति नहिं जाणी, उलटि जनम फिर आसी।
अरज करौं अबला करजोरे, स्याम तुम्हारी दासी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फाँसी।

शब्दार्थ—जेताई=जो कुछ भी। धरण=पृथ्वी। तेताइ=वह सभी। इण=इस। चहर की बाजी=चिड़ियों का खेल। भगवा=गेरुआ वस्त्र। आसी=आयेगा।

३

रामनाम रस पीजे मनुआँ, रामनाम रस पीजे।
तज कुसंग सतसंग बैठ नित, हरि चरचा सुण लीजे।
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ चित से बहाय दीजे।
मीरों के प्रभु गिरधर नागर, ताहि के रंग में भीजे।

शब्दार्थ—मनुआँ=मन। सुण=सुन। कूँ=को।

४

हरि मोरे जीवन प्रान अधार।
और आसरो नाहीं तुम बिन, तीनों लोक मँझार।
आप बिना मोहे कछु न सुहावै, निरख्यो सब संसार।
मीरा कहै मैं दास रावरी, दीज्यो मती बिसार।

शब्दार्थ—आसिरो=आश्रय, अवलम्ब। मँझार=में। मती=मत।

५

तनक हरि चितवौ जी मोरी ओर।
हम चितवत तुम चितवत नाहीं, दिल के बड़े कठोर।
मेरे आसा चितवन तुमरी, और न दूजी दोर।
तुमसे हमकूँ कबर मिलोगे, हमसी लाख करोर।

ऊभी ठाढ़ी अरज करत हूँ, अरज करत भइ भोर।
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी, देस्यूँ प्राण अकोर!

शब्दार्थ—तनक=तनिक, ज़रा। दोर=दौड़, पहुंच। कबर=कब। ऊभी ठाढ़ी=आशा में खड़ी। अकोर=अपने प्राण निछावर कर दूँगी।

रूप-राग

१

बसो मोरे नैनन में नँदलाल।
मोहनी मूरति साँवरी सूरति, नैणा बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजंती माल।
छुद्रघंटिका कटितट सोभित, नूपुर सबद रसाल।
मीराँ प्रभु संतन सुखदाई, भक्तबछल गोपाल।

शब्दार्थ—सूरति=स्वरूप। बिसाल=बड़े। सुधारस=अमृत। राजति=शोभित है। छुद्रघंटिका=करधनी। कटितट=कमर में। रसाल=मधुर, मीठे। भक्तबछल=भक्तवत्सल, भक्तों के प्रिय।

२

निपट बँकट छबि अटकै!
मेरे नैना निपट बँकट छबि अटके।
देखत रूप मदनमोहन को, पियत पियूख न मटके।
बारिज भवाँ अकल टेढ़ी मनो, अति सुगंध रस अटके।
टेढ़ी कटि, टेढ़ी करि मुरली, टेढ़ी पाग लर लटके।
मीरा प्रभु के रूप लुभानी, गिरधर नागर नट के।

शब्दार्थ—निपट=नितांत, सर्वथा। बँकट=वक्र, टेढ़ा। अटके=फँस गये। पियूख=अमृत। मटके=फिरे, लौटे। बारिज भवाँ .....

अटके=कमल की तरह भौंह घुँघराले बालों की सुगन्ध से आकर्षित उसमें उलझ गये हैं। करि=हाथ में। लर=लड़ी। लटके=लट्टू हो गये। नट के=नटवर श्रीकृष्ण के।

३

या मोहन के मैं रुप लुभानी !
सुन्दर बदन कमल दल लोचन, बाँकी चितवन मँद मुसकानी।
जमना के तीरे-तीरे धेन चरावै, बंसी में गावै मीठी बानी।
तन मन धन गिरधर पर वारूँ, चरण कँवल मीराँ लपटानी।

शब्दार्थ—या=इस। बांकी=तिरछी। नीरे=पास। वारूं=न्योछावर करूँ। लपटानी=लिपट गई।

४

हमरो प्रणाम बाँके विहारी को !
मोर मुकुट माथे तिलक बिराजै, कुंडल अलकाकारी को।
अधर मधुर पर बंसी बजावै, रीझ रिझावै राधा प्यारी को।
यह छवि देख मगन भई मीराँ मोहन गिरवरधारी को।

शब्दार्थ—बाँके बिहारी=रसिक श्रीकृष्ण। मोरमुकुट=मोरपंख का मुकुट। अलकाकारी=काले बाल। रीझ=प्रसन्न होकर।

५

मेरो मन बसिगो गिरधरलाल सों।
मोर मुकुट पीताम्बर हो गल बैजंती माल।
गउवन के सँग डोलत हो जसुमत को लाल।
कालिंदी के तीर हो, कान्हा गउवाँ चराय।
सीतल कदम की छाहियाँ, हो मुरली बजाय।
जसुमत के दुवरवाँ हो, ग्वालिन सब जाय।

बरजहु आपन दुलरुवा, हमसों अरुझाय।
वृन्दाबन क्रीड़ा करै, गोपिन के साथ।
सुर नर मुनि मोहे हो, ठाकुर जदुनाथ।
इन्द्र कोप घन बरखो, मूसल जलधार।
बूड़त ब्रज तो राखेऊ, मोरे प्रान आधार।
मीरा के प्रभु गिरधर हो सुनिये चितलाय।
तुम्हरे दरस की भूखी हो, मोहि कछु न सोहाय।

शब्दार्थ—बसिगो=रम गया। दुलरुवा=दुलारा। अरुझाया=उलझाता है। कालिन्दी=यमुना।

प्रेमासक्ति

१

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।
छाड़ि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई।
संतन ढिग बैठि-बैठि, लोक लाज खोई।
अँसुवन जल सींचि-सींचि, प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेल फैल गई, आणँद फल होई।
भगति देखि राजी हुई, जगति देख रोई।
दासी मीरा लाल गिरधर, तारो अब मोहीं।

शब्दार्थ—छाड़ि दई=छोड़ दी, त्याग दी। कानि=मर्यादा। कहा=क्या। आंणद=आनन्द। राजी=प्रसन्न।

२

मैं तो साँवरे के रँग राची।
साजि सिंगार बाँधि पग घुँघरू, लोक-लाज तजि नाची।

गई कुमति लई साधु की संगति, भगत रूप भई साँची।
गाय-गाय हरि के गुन निस-दिन, काल-ब्याल सूँ बाँची।
उण बिन सब जग खारो लागत, और बात सब काँची।
मीराँ श्री गिरधरनलाल सूँ, भगति रसीली जाँची।

शब्दार्थ – रँग राची=प्रेम में रँग गई। लई=स्वीकार कर ली। खारी=कड़ुआ। कांची=कच्ची। रसीली=सरस, आनन्दमयी।

३

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ
गिरधर म्हाँरो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ।
रैण पड़ै तब ही उठि जाऊँ, भोर भये उठि आऊँ।
रैण दिना वाके संग खेलूँ, ज्यों-त्यों वाहि रिझाऊँ।
जो पहिरावै सो पहिरूँ, जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उणकी प्रीत पुराणी, उण बिनि पल न रहाऊँ।
जहाँ बैठावै तितही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊँ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार-बार बलि जाऊँ।

शब्दार्थ—म्हाँरो=हमारा, मेरा। ज्यों-त्यों=जिस किसी भी प्रकार से। बलि जाऊँ=न्योछावर हो जाऊँ।

४

आली रे! मेरे नैणाँ बान पड़ी।
चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी।
कब की ठाढ़ी पंथ निहारुँ अपने भवन खड़ी।
कैसे प्राण पिया बिनि राखूँ, जीवन मूर जड़ी।
मीरा गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहैं बिगड़ी।

शब्दार्थ—नैणाँ=आँखों को। बाण=स्वभाव। चित्त-चढ़ी=हृदय पर अधिकार जमा चुकी। आन अड़ी=आकर जम गई। जीवन

.....जड़ी=प्राणो के आधार-स्वरूप औषध के समान बिकानी= बिक गई।

५

नैणा लोभी रे बहुरि सके नहिं आइ।
रूँम रूँम नख-सिख निरखत, ललकि रहे ललचाइ।
मैं ठाढ़ी ग्रिह आपणे री, मोहन निकसे आइ।
बदन चन्द परकासत हेली, मन्द मन्द मुसकाइ।
छोक कुटंबी बरजि बरजही, बतियाँ कहत बनाइ।
चंचल निपट अटक नहिं मानत, परहथ गये बिकाइ।
भली कहौ कोई बुरी कहौ मैं, सब लई सीसि चढ़ाइ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर के बिनि, पल भरि रह्यो न जाइ।

शब्दार्थ—बहुरि=लौटकर। रूँम-रूँम=रोमरोम। ललकि रहे= पाने की अभिलाषा करने लगे। ग्रिह=घर। परकासत=प्रकाश फैलाते हुए। हेली=सखी। बरिज बरजही=बारबार बरजते हैं। परहथ=पराये हाथ। सब . ...चढ़ाइ=सभी स्वीकार कर लिया।

६

माई री मैं तो लीयो गोबिन्दो मोल।
कोई कहै छाने कोई कहै चौड़े, लियो री बजंता ढोल।
कोई कहै मुँहगो कोई सुँहनो, लियो रे तराजू तोल।
कोई कहै कारो कोई कहै गोरो, लियो री अमोलिक मोल।
याही को सब लोग जाणत है, लियो री आँखी खोल।
मीराँ को प्रभु दर्शन दीज्यो, पूरब जनम को कोल।

शब्दाथ—लीयो=लिया है। गोविन्दो=कृष्ण। छाने=छिपकर। चौड़े=खुलेआम। बजंता ढोल=ढोल बजाते हुए। मुँहगो=महँगा।

सुहँगो=सस्ता । अमोलिक=अनमोल । कोल=वादा ।

७

मीराँ लागो रंग हरी, और न रँग अटक परी ।
चूड़ो म्हाँरे तिलक अरु माला, सील बरत सिणगारो ।
और सिंगार म्हाँरे दाय न आवै, यो गुर ग्यान हमारो ।
कोई निन्दो कोई बिन्दो म्हे तो, गोबिंद का गास्याँ ।
जिण मारग म्हारा साध पधारै, उण मारग म्हें जास्याँ ।
चोरी न करस्याँ जिव न सतास्याँ, काँई करसी म्हारो कोई ।
गज से उतर के खर नहिं चढ़स्याँ, ये तो बात न होई ।

शब्दार्थ—अटक=बाधा । चूड़ो=चुड़ियाँ । सील बरत=शील, व्रत । सिणगारी=शृंगार । दाय=पसंद । बिन्दो=बंदना करो । गास्याँ=गावेगी । करस्याँ=करेगी । करसी=करेगा । गज=हाथी । खर=गदहा । चढ़स्यां=चढ़ेगी ।

८

कोई कछू कहे मन लागा ।
ऐसी प्रीत लगी मनमोहन ज्यों सोना में सोहागा ।
जनम जनम का सोया मनुवाँ, सतगुर शब्द सुण जागा ।
मात पिता सुत कुटुम कबीला, टूट गयो ज्यूं तागा ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भाग हमारा जागा ।

शब्दार्थ—कबीला=परिवार । शब्द=उपदेश ।

९

बालहा मैं बैरागिण हूँगी हो ।
जींजीं भेष म्हारो साहिब रीझे, सोइ सोइ भेष धरूँगी हो ।
सील संतोष धरुँ घट भीतर, समता पकड़ रहूँगी हो ।
जाको नाम निरंजण कहिये, ताको ध्यान धरूँगी हो ।

गुरु ज्ञान रँगूँ तन कपड़ा, मन मुद्रा पेरुँगी हो।
प्रेम प्रीत सूँ हरि-गुण गाऊँ, चरणन लिपट रहूँगी हो।
या तन की मैं करुँ कींगरी, रसना नाम रटूँगी हो।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, साधाँ संग रहूँगी हो।

शब्दार्थ—बाल्हा=प्रिय। जींजीं=जो जो। निरजण=विकार रहित। घट=शरीर। मुद्रा=भाव। कींगरी=छोटी सारंगी। रसना =जीभ।

१०

म्हाने चाकर राखो जी, गिरधर लला चाकर राखो जी।
चाकर रहसूँ बाग लगासूं, नत उट दरसन पासूँ।
वृंदाबन की कुंज गलिन में, गोबिंद लीला गासूँ।
चाकरी में दरसन पाऊँ, सुमिरन पाऊँ खरची।
भाव भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बाताँ सरसी।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, गल बैजंती माला।
वृंदाबन में धेनु चरावे, मोहन मुरली वाला।
ऊँचे ऊँचे महल बनाऊँ, बिच बिच रासूँ बारी।
साँवरिया के दरसन पाऊँ, पहिर कुसुम्भी सारी।
जोगी आया जोग करन कूँ, तप करने संन्यासी।
हरी भजन कूँ साधू आये, वृंदाबन के बासी।
मीराँ के प्रभु गहिर गँभीरा, हृदे रहो जी धीरा।
आधी रात प्रभु दरसन दीन्हो, जमुना जी के तीरा।

शब्दार्थ—रहसूँ=रहूँगी। लगासूँ=लगाऊँगी। पासूँ=पाऊँगी। गासूँ=गाऊँगी। खरची=खर्च। धेनु=गाय।

विरह-व्यथा

१

माई म्हारी हरिह न बूझी बात ।
पिंड माँसूँ प्राण पापी, निकस क्यूँ नहीं जात ।
पाट न खोल्या मुखा न बोल्या साँझ भई परभात ।
अबोलणाँ जुग बीतण लागो, तो काहे की कुसलात ।
सावण आवण कह गया रे, हरि आवण की आस ।
रैण अँधेरी बीज चमके, तारा गिणत निरास ।
लेइ करारी कंठ सारूँ, मरूँगी विष खाइ ।
मीराँ दासी रामराती, लालच रही ललचाइ ।

शब्दार्थ—हरिह=प्रियतम ने ही । बूझी बात=पूछना । पिंड=शरीर । मासूँ=में से । पाट=परदा, घूँघट । मुखाँ=मुख से ।अबोलण=बिना बोले ही । काहे की=कैसी । कुसलात=कुशल । आवण=आने के लिए । सारूँ=काट डालूँ ।

२

घड़ी एक नहिं आवड़े तुम दरसण बिन मोय ।
तुम हो मेरे प्राण जी, कासूँ जीवण होय ।
धान न भावे, नींद न आवे, विरह सतावे मोय ।
घायल सी घूमत फिरूँ रे, मेरा दरद न जाणे कोय ।
दिवस तो खाय गमायो रे, रैण गमाई रोय ।
प्राण गमायो झूरताँ रे, नैण गमाई रोय ।
जो मैं ऐसा जाणती रे, प्रीत किये दुख होय ।
नगर ढँढोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोय ।
पंथ निहारूँ डगर बुहारूँ ऊभी मारग जोय ।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलियाँ सुख होय ।

शब्दार्थ—आवड़े=सुहाता व अच्छा लगता है। मोय=मुझे। कासूँ=किससे, किस प्रकार। धान=अन्न। झूरतां=शोकावेग में ही। ऊबी..... जोय=खड़ी खड़ी राह देखती हूँ। मिलियाँ मिल करके।

३

मैं बिरहिन बैठी जागूँ, जगत सब सोवै री आली।
बिरहिन बैठी रंगमहल में, मोतियन का लड़ पोवै।
एक बिरहिन हम ऐसी देखी, अँसुवन काला पोवै।
तारा गिण गिण रैण बिहानी, सुख की घड़ी कब आवै।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मिल के बिछुड़ न जावै।

शब्दार्थ—पोवै=पिरोती हूँ। बिहानी=बीत गई।

४

गली तो चारों बंद हुई, मैं हरि से मिलूँ कैसे जाय।
ऊँची नीची राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय।
सोच सोच पग धरूँ जतन से, बार बार डिग जाय।
ऊँचा नीचा महल पिया का, हमसे चढ्या न जाय।
पिया दूर पंथ म्हाँरा झीना, सुरत झकोला खाय।
कोस कोस पर पहरा बैठ्या, पैंड पैंड बटमार।
है बिधना कैसी रच दीन्हीं, दूर बस्यो म्हाँरो गाम।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सतगुरु दई बताय।
जुगन जुगन से बिछड़ी मीरा, घर में लीन्हा आय।

शब्दार्थ—गली=मार्ग। रपटीली=फिसलने वाली। झीना=पतला। सुरत=स्मरणशक्ति। झकोला=झोंका। पैंड पैंड=पग पग पर। बटमार=डाकू। लीन्हा आय=रख ली।

५

म्हारो जनम मरन को साथी,
थांने नहिं बिसवूँ दिन राती।

तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती ।
ऊँची चढ़ चढ़ पंथ निहारूँ रोय रोय अँखियाँ राती ।
यो संसार सकल जग झूँठो, झूँठा कुल रा न्याती ।
दोउ कर जोड्याँ अरज करत हूँ, सुण लीज्यो मेरी बाती ।
यों मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूँ मद मातो हाथी ।
सतगुरु हस्त धरयो सिर ऊपर, आँकुस दे समझाती ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित राती ।
पल पल तेरा रूप निहारूँ, निरख निरख सुख पाती ।

शब्दार्थ—थाने=तुम को । रायी=लाल लाल । न्याती=नाते दार । जोड्याँ=जोड़कर । हरामी=दुष्ट । हस्त=हाथ । राती=रत, लगा हुआ ।

६

डारि गयो मनमोहन पासी ।
आँबा की डालि कोइल इक बोलै, मेरो मरण अरु जग केरी हाँसी ।
बिरह की मारी मैं बन बन डोलूँ, प्रान तजूँ करवत लूँ कासी ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी ।

शब्दार्थ—पासी=फाँसी । आँबा=आमा । डालि=डाल । केरी=की । ल्यूँ=लूँ । ठाकुर=स्वामी ।

७

परम सनेही राम की निति ओलूँ री आवै ।
राम हमारे हम राम के, हरि बिन कछू न सुहावै ।
आवण कह गये अजहुँ न आये, जिवड़ो अति उकलावे ।
तुम दरसण की आस रमैया, कब हरि दरस दिखावै ।
चरण कंवल की लगनि लगी नित, बिन दरसण दुख पावै ।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीज्यो, आँणद बरण्यूं न जावै ।

शब्दार्थ—ओलँ=याद । उकलावै=अकुलाता है । रमैया=प्रियतम रूप राम । लगन=प्रीत । बरण्यूँ=वर्णन करना ।

८

नातो नाम को मोसूँ तनक न तोड्यो जाइ ।
पानाँ ज्यूँ पीली पड़ी रे, लोग कहैं पिंड रोग ।
छाने लाँघण मैं किया रे, राम मिलन के जोग ।
बाबल बैद बुलाइया रे, पकड़ दिखाई म्हाँरी बाँह ।
मूरिख बैद मरम नहिं जाणै, करक कलेजा माँह ।
जा बैदा घर आपणे रे, मेरो नांव न लेइ ।
मैं तो दाधी बिरह की रे, तू काहे कूँ दारू देइ ।
मास गले गल छीजियो रे, करक रह्या गल आहि ।
आँगलिया री मूँदड़ो, म्हारो आवण लागी बाँहि ।
रहो रहो पापी पपीहा रे, पिव का नाम न लेइ ।
जे कोइ बिरहणि साहले, पिव कारण जिव देइ ।
खिण मंदिर खिण आँगणे रे, खिण खिण ठाढ़ी होइ ।
घायल ज्यूँ घूमूँ सदा री, म्हारे बिथा न बूझै कोइ ।
काढ़ि कलेजो मैं धरूँ रे, कौवा तू ले जाइ ।
ज्याँ देशां म्हाँरो पिव बसै वे देखैं तू खाइ ।
म्हारे नातो नाव को रे, और न नातो कोइ ।
मीरा व्याकुल बिरहणी रे, पिया दरस दीजो मोइ ।

शब्दार्थ—नातो=सम्बन्ध । मोसूँ=मुझ से । पानाँ ज्यूँ=पत्तेकी तरह । पिंड रोग=पांडु रोग । छाने=छिपकर । लाँघण=उपवास । बाबल=बाबा । करक=कसक । दाधी=जली । दारू=दवा । छीजिया=घट गया । करक=हड्डियाँ । आहि=आकर । आँगलियाँ री मूदड़ो=अंगुलियों की अँगूठी । आवण लागी=आने लगी ।

साम्हले=सुन पावेगी। खिण खिण=क्षण क्षण। मंदिर=घर। ज्याँ देसा=जिस देश में। मोइ=मुझ को।

६

म्हारी सुध ज्यूं जानो ज्यूं लीजो जी।
पल-पल भीतर पंथ निहारूँ दरसण म्होंने दीजो जी।
मैं तो हूँ बहु अवगुणहारी, औगुण चित्त मत दीजो जी।
मैं तो दासी प्यारे चरण कँवल की, मिल बिछुरन मत कीजो जी।
मीरा तो सतगुर जी सरणो, हरि चरणाँ चित दीजो जी।

शब्दार्थ—ज्यूँ···ज्यूँ=जैसे हो वैसे, सभी प्रकार से।

१०

कोई कहियो रे प्रभु आवन की।
आवन की मन भावन की।
आप न आवै लिख नहिं भेजै, बाँण पड़ी ललचावन की।
ए दोइ नैणा कह्यो नहिं मानै, नदिया बहै जैसे सावन की।
कहा करूँ कछु नहिं बस मेरो, पाँख नहीं उड़ जावन की।
मीराँ कहै प्रभु कबर मिलोगे, चेरी भइ हूँ तेरे दावन की।

शब्दार्थ—बाँण=स्वभाव। ललचावन की=ललचाने की। पाँख=पर, डैने। चेरी=दासी। दावन,=दामन सहारा।

सावन राग

१

मतवारो बादल आयो री हरि के सँदेशा कुछ नहिं लायो रे।
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल शब्द सुनायो रे।
कारी अंधियारी बिजली चमकै, बिरहिन अति डरपायो रे।
गाजे बाजे पवन मधुरिया, मेहा अति झड़ लायो रे।
फूंके काली नाग बिरह की जारी, मीरा मन हरि भायो रे।

शब्दार्थ—दादुर=मेढ़क। मेहा=बादल। झड़=झड़ी। जारी=जली हुई।

२

बादल देख डरी हो श्याम मै बादल देख डरी।
काली पीली घटा ऊमटी, बरस्यो एक घरी।
जित जाऊँ तित पाणी पाणी, हुई सब भोम हरी।
जाका पिव परदेश बसत है, भीजै बार खरी।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, कीज्यो प्रीत खरी।

शब्दार्थ—काली पीली=घनघोर। ऊमटी=उमड़ी। भोम=भूमि। जाका=जिसका। बार=बाहर। खरी=खड़ी। खरी=सच्ची।

३

रे पपइया प्यारे कबकौ बैर चितारो।
मैं सूती छी अपने भवन में, पिय पिय करत पुकारो।
दाध्या ऊपर लूँण लगायो, हिवड़े करवत सारो।
उठि बैठो वृक्ष की डाली, बोल बोल कंठ सारो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित धारो।

शब्दार्थ—चितारो=चेत किया। छी=थी। दाध्या=जले पर। लूँण=नमक। हिवड़े=कलेजा। करवत=आरी। सारो=चलाया।

४

सुनी मैं हरि आवन की आवाज।
म्हैल चढ़ चढ़ि जोउँ मेरी सजनी, कब आवैं महराज।
दादुर मोर पपइया बोलै, कोइल मधुरे साज।
उमंग्यो इन्द्र चहूँ दिसि बरसै, दामिण छोड़ी लाज।
धरती रूप नवा नवा धरिया, इन्द्र मिलण कै काज।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, वेग मिलो महराज।

शब्दार्थ—आवाज—शब्द, खबर। म्हैल=महल। जोऊँ=देखती हूँ। साज=शब्द से। नवा नवा=नया नया।

५

भींजे म्हारो दावन चीर, सावणियो लूम रह्यो रे।
आप तो जाय विदेसाँ छाये, जिवड़ो धरत न धीर।
लिख लिख पतियाँ संदेशा भेजूँ कब घर आवै म्हारो पीव।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दरसन दोने बलबीर।

शब्दार्थ—दावन चीर=आँचल। लूम=घिरना। जिवड़ो=जी, हृदय। पीव=प्रियतम। सावणियो=सावन के बादल। दोने=दोना। बलवीर=कृष्ण।

६

झुक आई बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।
सावन में उमँग्यो मेरो मनवा, भनक सुनी हरि आवन की।
उमड़ घुमड़ चहुँ दिस से आयो, दामण दमक झर लावन की।
नन्हीं नन्हीं बूंदन मेहा बरसै, सीतल पवन सोहावन की।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, आनंद मंगल गावन की।

शब्दार्थ—उमँग्यो=उमंगों से भर आया। मनवा=मन। दामण =बिजली। मेहा=वर्षा।

७

नंदनंदन बिलमाई, बदरा ने घेरी माई।
इत घन लरजे उत घन गरजे चमकत बिज्जु सबाई।
उमड़ घुमड़ चहुँ दिस से आया, पवन चले पुरवाई।
दादुर मोर पपीहा बोलै, कोइल शब्द सुनाई।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कंवल चित लाई।

शब्दार्थ—बिलमाई=लुभाकर रोक रखा। लरजे=झुक झुक कर बरसना। सबाई=विशेष रूप से।

८

बदला रे तू जल भर ले आयो।
छोटी छोटी बूंदन बरसन लागीं कोइल सबद सुनायो।
गाजै बाजै पवन मधुरिया अंबर बदरा छायो।
सेज संवारी पिय घर आये, हिल मिल मंगल गायो।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, भाग भलो जिन पायो।

शब्दार्थ—बदला रे=अरे बादल। मधुरिया=मंद मंद। सेज=शय्या। सँवारी=सजाई। भलो=अच्छा।

९

पाइया रे पिय की बाणि न बोल!
सुणि पावेली बिरहणी रे, थारो राखैली पाँख मरोड़।
चाँच कटाऊँ पपइया रे, ऊपरि कालर लूण
पिव मेरा मैं पीव की रे, तू पिव कहै स कूण॥
थारा सबद सुहावणा रे, जो पिव मेला आज।
चाँच मढ़ाऊं थारी सोवनी रे, तू मेरे सिरताज।
प्रीतम को पतियाँ लिखूं, कउआ तू ले जाइ।
जाइ प्रीतम जी से यूं कहै रे, थाँरी बिरहण धान न खाइ।
मीरा दासी व्याकुली रे, पिव पिव करत बिहाई।
बेगि मिली प्रभु अंतरजामी, तुम बिनि रह्यो ही न जाइ।

शब्दार्थ—पावेली=पावेगी। राखैली...मरोड़=ऐंठकर तोड़ डालेगी। चाँच—चोंच। कालर=काला। स=सो। कूण=कौन। मेला=मिलन। सोवनी=सोने से। सिरताज=आदरणीय। धान=अन्न।

१०

रे साँवलिया म्हारे आज रंगीली गणगोर छै जी।
काली काली बदली में बिजली चमके, घटा घनघोर छै जी।
दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल कर रही सोर, छै जी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरणाँ में म्हारो जोर छै जी।

शब्दार्थ—रँगीली=रंगभरी। गणगोर=चैत्र शुक्ला तृतीया को होने वाला गौरी व्रत का त्योहार। छै=है। चरणा=चरणों का। जोर=शक्ति, विश्वास।

विविध

१

अच्छे मीठे चाख चाख, बोर लाई भीलणी।
ऐसी कहा अचारवती, रूप नहीं एक रती।
नीच कुल ओछी जात, अति ही कुचीलणी।
झूठे फल लीन्हे राम, प्रेम की प्रतीत जाण।
ऊँच नीच जाने नहीं, रस की रसीलणी।
ऐसी कहा बेद पढ़ी, छिन में विमाण चढ़ी।
हरि जी सूं बाध्यो हेत, दास मीरा तरै जोइ।
पतित पावन प्रभु, गोकुल अहीरणी।

शब्दार्थ—चाख चाख=चख चख कर। बोर=बेर के फल। भीलणी =भील जाति की स्त्री। अचारवती=आचार वाली। कुचीलणी=मैले वस्त्रवाली। झूठे=जूठे। प्रतीत=विश्वास।

२

कबहूँ मिलोगे मोहि आई, रे तू जोगिया।
तेरे कारण जोग लियो है, घरि घरि अलख जगाई।
दिवस न भूख रैण नहिं निंदरा, तुम बिन कछू न सुहाई।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी, मिली करि तपति बुझाई।

शब्दार्थ—कबहूँ=कभी तो। जोगिया=जोगी, प्रियतम। अलख जगाई=पुकार पुकार कर परमात्मा का स्मरण किया। तपति=तपन, ज्वाला।

३

कोई श्याम मनोहर ल्योरी, सिर धरे मटकिया बोलै।
दधि को नाव बिसर गई ग्वालन, 'हरि ल्यो, हरि ल्यो बोलै।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चेरी भई बिन मोलै।
कृष्ण रूप छकी है ग्वालनि, औरहि औरै बोलै।

शब्दार्थ—कोई=कोई गाहक। ल्योरी=लेओरी। मटकिया=मटकी। बिनमोलै=बिना दाम की। छकी=उन्मत्त। औरिहि और=कुछ का कुछ, और का और।

४

चलो अगम के देश, काल देखत डरै।
वहाँ भरा प्रेम का हौज, हंस केल्यॉं करै।
ओढण लजा चीर, धीरज को घाँघरो।
छिमता काँकण हाथ, सुमति को मून्दरो।
दिल दुलड़ी दरियाव, साँच को दोवड़ो।
उबटण गुरु को ज्ञान, ध्यान को धोवणो।
कान अखोटा ज्ञान जुगत को झूटणो।
बेसर हरि को नाम, चूड़ो चित ऊजलो।
जीहर सील संतोष, निरत को घूंघरो।
विंदली गज और हार, तिलक गुरु ज्ञान को।
सज सोलह सिणगार, पहिर सोने राखड़ी।
साँवलिया सूं प्रीति, औरोंसूं आँखड़ी।

शब्दार्थ—चालो=चलो। अगम=अगम्य, परमात्मा। काल=मृत्यु। हौज=कुंड। हंस=आत्मा। केल्यॉं=क्रीड़ा करना। छिमता=

क्षमता। कांकड़=कंकन। दिलदरियाव=उदार हृदय। दुलड़ी=दो लड़ों की माला। दोवड़ो=एक प्रकार का गहना। धोवणो=स्नान। अखोटा=कान का गहना। जोहर=गहना। निरत=लीनता। विंदली =टिकुली। गज=गजमुक्ता की माला। औरांसूं=दूसरों से। आंखड़ी =उदासीन। राखड़ी=चूड़ामणि।

५

मीरा मनमानी सुरत सैल असमानी।
जब जब सुरत लगे वा घर की, पल पल नैनन पानी।
ज्यों हिये पार तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी।
रात दिवस मोहिं नींद न आवत, भावै अन्न न पानी।
ऐसी पीर विरह तन भीतर, जागत रैन विहानी।
ऐसा बैद मिलै कोई भेदी, देस विदेस पिछानी।
तासों पीर कहूँ तन केरी, फिर नहिं भरमों खानी।
खोजत फिरों भेद वा घर को, कोई न करत बखानी।
रैदास संत मोहि मिले सत गुरु, दीन्हा सुरत सहदानी।
मैं मिली जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी।
मीरा खाक खलक सिर डारी, मैं अपना घर जानी।

शब्दार्थ—मनमानी=मन में बैठ गई। सुरत सैल=ध्यान द्वारा भ्रमण। सैल=सैर। आसमानी=ऊँची, ईश्वरीय। भेदी=जानकर। पिछानी=पहचानने वाला। खानी=खानि, उत्पत्ति। भरमों= आवागमन का भ्रम। सहदानी=निशानी। खलक=संसार। खाक सिर डारी=उपेक्षा कर दी। जानी=जान गई।

६

मैं गिरधर रँग राती सैयाँ।
पचरँग चोला पहर सखी मैं झिरमिट खेलन जाती।

ओही झिरमिट माँ मिल्यो साँवरो, खोल मिली तन गाती।
जिनका पिया परदेश बसत है लिख लिख भेजै पाती।
मेरा पिया मेरे हीय बसत है, ना कहुँ आती जाती।
चंदा जायगा सूरिज जायगा, जायगी धरणि अकासी।
पवन पाँणी दोनु जायँगे, अटल रहे अविनासी।
सूरति निरत का दिवला सँजोले, मनसा की करले बाती।
प्रेम हटी का तेल भँगाले जग रह्या दिन ते राती।
सतगुण मिलिया साँसा भाग्या, सैन बताई साँची।
ना घर तेरा ना घर मेरा गावै मीरा दासी।

शब्दार्थ—रंगराती=प्रेम में मग्न। पचरंग=पांच तत्वों द्वारा निर्मित। चोला=फकीरों का झाँगा। झिरमिट=एक खेल जिसमें सारा शरीर इस प्रकार ढँक लिया जाता है कि कोई जल्दी से पहचान न सके। गाती=गले में बँधी चादर। खोल मिली=तन्मय हो गई। सुरत=परमात्मा की स्मृति। निरति=विषय से विरक्ति। हटी=बाजार। जग रह्या=जल रहा है। दिन ते राती=दिन से रात तक। साँसा=संशय। भाग्या=दूर हो गया। सैन=संकेत, रहस्य।

७

यहि बिधि भक्ति कैसे होय।
मनकी मैल हियतें न छूटी, त्रियो तिलक सिर धोय।
काम कूकर लोभ डोरी, बाँधि मोहि चंडाल।
क्रोध कसाई रहत घट में, कैसे मिले गोपाल।
बिलार विषया लालची रे, ताहि भोजन देत।
दीन हीन है क्षुधा रत से, राम नाम न लेत।
आपहि आप पुजाय के रे, फूले अंग न समात।
अभिमान टीला किए बहु कहु, जल कहाँ ठहरात।

जो तेरे हिय अंतर की जानै, तासो कपट न बनै ।
हिरदे हरि नाम न आवे, मुख तें मनियाँ गनै ।
हरी हितु से हेत कर, संसार आसा त्याग ।
दासी मीरा लाल गिरधर, सहज कर वैराग ।

शब्दार्थ - मन की मैल=मनोविकार । काम=कामनायें । विषया =विषययोपभोगी । किये बहु=अनेक बना दिये । मनियाँ=माला के दाने । सहज=आसान ।

८

रंग भरी रंग भरी रँग सूँ भरी री ।
होली आई प्यारी, रंग मूँ भरी री ।
उड़त गुलाल लाल भये बादल पिचकारिन की लगी झरी ।
चोवा चंदन और अरगजा, केसर गागर भरी धरी, री ।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, चेरी होय पायन में परी, री ।
शब्दार्थ— झरी=झड़ी । गागर=गगरी ।

९

नैनन बनज बसाउँ री, जो मैं साहिब पाऊँ ।
इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न नाऊँ री ।
त्रिकुटी महल मे बना झरोखा, तहाँ से झाँकी लगाऊँ री ।
सुन्न महल में सुरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ री ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ री ।

शब्दार्थ—बनज=कमल के समान कोमल । साहिब=इष्टदेव । पलक ननाऊँ=पलक न गिराऊँ । त्रिकुटी महल=दोनों भौहों के मध्य का स्थान । झाँकी लगाऊँ=ध्यान का लक्ष्य बनाऊँ । सुन्न महल में= ब्रह्मरंध्र में । सुरत=ध्यान

१०

अब तो निभायां सरेगी, बांह गहे की लाज।
समरथ सरण तुम्हारी सइयाँ सरब सुधारण काज।
भवसागर संसार अपरबल, जामे तुम हो झ्याज।
निरधारां आधार जगत गुरु, तुम बिन होय अकाज।
जुग जुग भीर हरी भगतन की, दीनी मोच्छ समाज।
मीरा सरण गही चरणन की, लाज रखो महराज।

शब्दार्थ—निभायाँ सरेगी=निबाहनी पड़ेगी। सरब=सब। अपरबल =प्रबल, अपार। झ्याज=जहाज। निरधारां=निराधार। समाज= समुदाय तक को।